श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान

महाशिवरात्रि

ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

"माँगो तो तुम्हें मिलेगा"

"दर्शन बुक करने" की चाह रखने वाली सात साल की उस बच्ची के साथ घटित प्रसंग सुनाने के बाद, गुरुमाई जी ने एक और सिखावनी प्रदान की जो इस प्रसंग से उजागर होती है।

गुरुमाई जी ने कहा, "माँगो तो तुम्हें मिलेगा। हम सब यह जानते हैं। हर परम्परा में ऐसा कहा गया है। यह हिन्दू परम्परा में है, ईसाई परम्परा में है, यहूदी परम्परा में है, इस्लामी परम्परा में है। हर परम्परा में, हर धर्म में सत्य एक ही है।"

जब गुरुमाई जी ने यह कहा तो मानो मेरे मन में रोशनी-सी कौंध गई; यह सदियों पुराना प्रज्ञान फिर से नया हो उठा। "माँगो तो तुम्हें मिलेगा," यह कथन बाइबिल के जिस अंश से लिया गया है, उस विषय में मुझे सामान्य जानकारी थी। भगवान शिव के बारे में मैंने जो कथाएँ व शास्त्र पढ़े हैं, उनमें मैंने निश्चित तौर पर इस विषय में पढ़ा है। और अपने अध्ययन व दूसरों के साथ हुई बातचीत से मुझे यह मालूम था कि इस्लाम व यहूदी धर्मग्रन्थों में भी ऐसी ही भावना प्रतिबिम्बित होती है। परन्तु जब तक गुरुमाई जी ने सत्संग में इस बारे में नहीं बताया था, तब तक मैंने *इस* सिद्धान्त, *इस* मूल-विषय के महत्त्व पर विचार नहीं किया था, इसकी सराहना नहीं की थी, जिसका उल्लेख संसार के *सभी* मुख्य धार्मिक व आध्यात्मिक परम्पराओं में किया गया है।

हम चाहे किसी भी परम्परा का अनुसरण करने का निर्णय लें, पर हमारे प्रयास को ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है, इस तथ्य से हम क्या सीख सकते हैं? यहूदी व ईसाई बाइबिल, कुरान और भारत के असंख्य शास्त्र, सभी ईश्वर की कल्याणकारी कृपा का गुणगान करते हैं। तथापि वे यह *भी* स्पष्ट करते हैं कि साधक को ही ईश्वर की ओर पहला क़दम उठाना होगा। उसे स्पष्टता से शब्दों में यह व्यक्त करना होगा कि वह क्या चाहता है।

सिद्धयोग पथ पर, गुरुमाई जी ने प्रार्थना की शक्ति के बारे में विस्तार से सिखाया है। प्रार्थना करना एक अत्यन्त पवित्र कृत्य है जिसमें हम भगवान से बात करते हैं, भगवान से याचना करते हैं, उनके साथ संवाद करते हैं व उनसे जुड़ते हैं। प्रार्थना अपने आप में एक अभ्यास है, यह एक ऐसा कृत्य है जो मन की समझ-बूझ को हृदय के सहज ज्ञान के साथ एक कर देता है। एक प्रार्थना व्यक्त करने में

बहुत कुछ शामिल हो सकता है। भगवान के समक्ष बस साष्टांग प्रणाम कर यह आशा करना कि बाक़ी सब कुछ भगवान सँभाल लेंगे, प्रार्थना करना इससे कहीं बढ़कर है। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि हम वह कह दें जो हमें 'सही' लगता है, जो सुनने में अच्छा है या हमें जो लगता है कि भगवान हमसे यह सुनना चाहते हैं।

एक सच्ची प्रार्थना है, हमारी आत्मा का परम आत्मा से मिलन, वह आत्मा जो हमारे चारों ओर, सर्वत्र स्पन्दायमान है। और ऐसी सच्ची प्रार्थना करने के लिए हमें पहले *सुनना* होगा—उदाहरण के लिए, हमें सुनना होगा बच्चों के क़दमों की आवाज़ को, या हमारी खिड़कियों पर हवा की सनसनाहट को। कम्प्यूटर के कीबोर्ड पर लगातार चलती उंगलियों की टक-टक को और एक गर्म स्टोव पर उबलती सब्ज़ी की खदबदाहट को। जिस स्पन्दन को हम तलाश रहे हैं वह *हरेक* ध्वनि में समाहित है—उन आवाज़ों में भी जिन्हें हम साधारण समझते हैं, और उनमें भी जिन्हें हम दिव्यता के ही स्पन्दन मानते हैं।

तथापि, हमें व्यक्तिगत पसन्द को भी ध्यान में रखना चाहिए। हरेक व्यक्ति का शरीर अपने आप में अलग होता है। हमारे तन्त्रिका तन्त्र यानी नर्वस सिस्टम की संवेदनशीलता अलग-अलग होती है। कुछ आवाज़ें हमें सुकून देती हैं और कुछ हमें परेशान कर देती हैं। यह समझ लेना मेरे लिए सहायक ही नहीं, बल्कि महत्त्वपूर्ण भी रहा है कि वे कौन-कौन-सी आवाज़ें हैं जो मुझे पसन्द हैं और किस तरह के शोर हैं जो मैं जानती हूँ कि मुझे परेशान करते हैं और मुझे अपने आपको उनसे दूर रखना है। यदि हमें यही नहीं मालूम है कि हमारे शरीर को क्या पसन्द है और क्या पसन्द नहीं है तो हम भगवान की अनुभूति करने के लिए इस शरीर का उपयोग कैसे कर सकते हैं? इसके विपरीत, यदि हम स्वयं अपने साथ इस प्रक्रिया को अपनाते हैं, यदि हम यह जान लेते हैं कि हमारी पसन्द क्या है और हमारे लिए क्या अच्छा है तो हम अपने आपको यह अनुभव करने का अद्‌भुत अवसर दे रहे होते हैं कि हम ईश्वर को स्पर्श कर सकें।

अन्ततः, बस एक ही ध्वनि है जो इस संसार के मौन से उदित हुई है, और यह वही ध्वनि है जो वायु में और लहरों में और हमारे हृदय की धड़कनों में गुंजायमान है। आदि नाद 'ॐ'। जब हम इस नाद को, इस ध्वनि को सुनने की कोशिश करते हैं, जब हम अपने शब्दों द्वारा इसे अभिव्यक्त करते हैं, तो हमारी प्रार्थनाएँ इसकी शक्ति से व्याप्त होती हैं। वे 'ॐ' की शक्ति को धारण किए हुए होती हैं।

मैं यह अवश्य मानती हूँ कि शायद हमारी प्रार्थनाएँ *हमेशा* ही इस स्थिति से न उभरें। कभी-कभी हम निराशा और मायूसी के कारण प्रार्थना करते हैं, या डर के कारण या अपराध-बोध के कारण भी प्रार्थना करते हैं। कभी हम इसलिए प्रार्थना करते हैं क्योंकि हमें सचमुच कुछ चाहिए होता है। हमें

इस बात को लेकर खुद के प्रति कठोर बनने की, खुद को दोष देने की ज़रूरत नहीं है। हमने जिस भी बेचैनी के कारण मुख्यतः प्रार्थना की हो, उसमें *और अधिक* अपराधबोध जोड़कर, निश्चित रूप से, हमें उस बेचैनी को अधिक बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। जैसा कि मैंने पहले लिखा है, हमारी प्रार्थनाएँ फिर भी सुनी जाएँगी। भगवान शिव को 'वरद' यानी वरदान देने वाले, 'शम्भू' यानी सुखदाता और 'करुणानिधि' यानी करुणा के भण्डार कहकर क्यों सम्बोधित किया जाता है, इसका एक कारण है।

फिर भी, गुरुमाई जी की सिखावनियों से मुझे जो समझ में आता है, वह यह कि प्रार्थना इससे *कहीं बढ़कर* भी हो सकती है। यह मात्र किसी इच्छा की पूर्ति से बढ़कर हो सकती है। यह भगवान की अनुभूति के द्वार खोल सकती है—और फिर उस अनुभूति से जो शब्द उभरते हैं, वे भगवान की इच्छा के अनुरूप होते हैं। मेरा मन वर्ष २०२६ के लिए श्रीगुरुमाई के सन्देश की ओर जा रहा है और विशेषकर इसकी दूसरी पंक्ति की ओर : "अनुपालन करो! अपने धर्म को निभाओ।" मुझे यह बात बहुत दिलचस्प लगती है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि हमारा धर्म क्या है और फिर उसे निभाने के लिए, उसका अनुपालन करने के लिए हमें कुछ हद तक पहले अपने बारे में, दूसरों के बारे में और इस संसार के बारे में अभिज्ञता होना आवश्यक है।

हाल ही में, मैं श्री मुक्तानन्द आश्रम में अपनी एक मित्र के साथ थी और हम दोनों एक-दूसरे को प्रार्थना के अपने-अपने संस्मरण सुना रहे थे। हमने पाया कि भगवान नित्यानन्द के मन्दिर में उनके समक्ष जाकर प्रार्थना करते समय हम दोनों को एक जैसे ही अनुभव हुए हैं। प्रार्थना करने से पहले हम लोग *काफ़ी* सोचते हैं कि हमें क्या माँगना है। अपनी इच्छाओं को अभिव्यक्त करने के लिए हम *सटीक* शब्दों को चुनते हैं। यहाँ तक कि हम उन शब्दों को याद भी कर लेते हैं जो हमें कहने हैं, ताकि प्रार्थना करने का समय आने पर वे हमें आसानी से याद आ जाएँ। परन्तु फिर, जब हम बड़े बाबा जी के सम्मुख आते हैं—जब हमारी आँखें उनके स्वर्णिम स्वरूप को देखती हैं और उनकी कृपामय दृष्टि हमारे ऊपर पड़ती है—तब अन्दर से वे शब्द निकलते ही नहीं जिनका हमने इतने मनोयोग से अभ्यास किया होता है। उनके स्थान पर, *दूसरे* ही शब्द निकलने लगते हैं, ऐसे शब्द जो खुद हमें भी विस्मित कर देते हैं, परन्तु उन शब्दों द्वारा वह बात शायद अधिक सटीक रूप में व्यक्त हो जाती है जिसकी हमें वास्तव में आकांक्षा थी।

मेरे साथ ऐसा इतनी बार हो चुका है कि मैं इस बात को लेकर हँसे बिना रह नहीं पाती। साथ ही, इससे मेरी इच्छा होने लगी है कि मैं प्रार्थना के प्रति अपने दृष्टिकोण को बेहतर बनाऊँ। इससे मैं अपने आपको बेहतर रूप से समझना चाहती हूँ और खुद के साथ ईमानदार बनी रहना चाहती हूँ। मेरा यह मानना है कि मनोभावों की तरंगों और हमारी सोच में कभी-कभार आ जाने वाली कठोरता

के मूल में जो ईमानदारी, जो सच्चाई निहित है, उससे हम उस महान सत्य तक पहुँच जाते हैं जिसके बारे में गुरुमाई जी बता रही हैं।

और जब हमारी प्रार्थनाएँ सत्य के इस स्थान से उभरती हैं, तब उन्हें साकार *होना ही है,* अन्य कोई विकल्प नहीं। जैसा कि सिद्धान्त है, "माँगो तो तुम्हें मिलेगा।" हम बस वह व्यक्त कर रहे होते हैं जो होना ही है। हम उस सम्भावना को वास्तविकता में ढाल रहे होते हैं जो इस पूरे समय में, अब तक बिना कोई आकार लिए हुए वायुमण्डल में मौजूद थी। इतना ही नहीं, हम संसार में जिसे प्रकट कर रहे हैं, उसमें दीर्घकाल तक बने रहने की शक्ति होती है और उसमें वह लाभ भी है जो केवल हम तक सीमित नहीं रहता बल्कि आगे बढ़ता जाता है। हाँ, प्रार्थना से कोई भी इच्छा पूरी हो सकती है। परन्तु उस इच्छा के पूरे होने से मिली सन्तुष्टि का आनन्द हम कितनी देर तक उठाएँगे, इससे पहले कि एक और, फिर एक और, फिर एक और इच्छा जागकर उसकी जगह ले ले?

मेरा यह अनुभव रहा है कि हृदय से की गई प्रार्थना असीमित रूप से फलित होती है। यह आगे भी बनी रहती है। यह एक तावीज़ की तरह बन जाती है जो मांगल्य को बढ़ाती है—प्रार्थना कर रहे व्यक्ति के लिए भी और उन सभी के लिए भी जिनका जीवन उस व्यक्ति की प्रार्थना से, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, प्रभावित होता है। मुझे महान सन्त, शिरडी के साईं बाबा का वही प्रसिद्ध उद्धरण याद आ रहा है जिसे मैंने गुरुमाई जी को कई बार कहते हुए सुना है : "मैं लोगों को वह देता हूँ जो वे चाहते हैं, इस उम्मीद से कि एक दिन वे वह चाहेंगे जो मैं उन्हें देना चाहता हूँ।"[१]

तो अब, मैं आपसे पूछना चाहती हूँ—क्या आप ऐसे व्यक्ति हैं जिसे प्रार्थना करना व अपनी प्रार्थनाएँ अर्पित करना लाभप्रद लगता है? यदि हाँ, तो क्या आप कृपया बताएँगे कि अपने जीवन में आपने प्रार्थना की शक्ति की अनुभूति किस प्रकार की है?

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा लिखित, 'अन्तर-शुद्धि के सोपान : दिव्य सद्गुणों का योग' [चित्शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१३], पृ ८० में उद्धृत।